

Chapter सोलह

जम्बूद्वीप का वर्णन

महाराज प्रियव्रत तथा उनके पूर्वजों के चरित्र का वर्णन करते हुए शुकदेव गोस्वामी ने मेरु पर्वत तथा भूमण्डल नामक लोक का भी वर्णन किया। भूमण्डल कमल पुष्प के सदृश है और इसके सातों द्वीपों की तुलना कमल के कोश (आवर्त) से की जाती है। जम्बूद्वीप नामक स्थान इस कोश के मध्य में स्थित है। जम्बूद्वीप में सुमेरु नामक एक पर्वत है जो ठोस स्वर्ण से बना है। इस पर्वत की ऊँचाई ८४,००० योजन है, जिसमें से १६,००० योजन पृथ्वी के भीतर है। इसकी चौड़ाई शृंग पर ३२,००० योजन और गिरिपाद पर १६,००० योजन आँकी जाती है (एक योजन लगभग आठ मील के बराबर होता है)। पर्वतों का राजा सुमेरु पृथ्वी ग्रह का आधार है।

इलावृत्त-वर्ष के दक्षिण में हिमवान्, हेमकूट तथा निषध नामक पर्वत हैं और उत्तर में नील, श्वेत तथा शृंग पर्वत हैं। इसी प्रकार पूर्व तथा पश्चिम दिशा में माल्यवान् तथा गंधमादन नामक दो विशाल पर्वत हैं। सुमेरु पर्वत के परितः मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व तथा कुमुद नामक चार पर्वत हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत १०,००० योजन लम्बा तथा १०,००० योजन ऊँचा है। इन चारों पर्वतों पर १,१०० योजन ऊँचे वृक्ष हैं। इनमें एक आम का, एक जामुन का, एक कदम्ब का और एक बरगद का वृक्ष है। इसमें अनेक सरोवर भी हैं, जो दुग्ध, मधु, इक्षुरस तथा शुद्ध जल से पूर्ण हैं। ये सरोवर समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साथ ही इसमें नंदन, चित्ररथ, वैभ्राजक तथा सर्वतोभद्र नामक उद्यान भी हैं। सुपार्श्व पर्वत के पार्श्व में एक कदम्ब वृक्ष है, जिसके कोटर से मधु की धारा प्रवाहित हो रही है। कुमुद पर्वत पर शतवल्श नामक एक वटवृक्ष है, जिसके मूल से दूध, दही तथा अन्य वांछित पदार्थों की नदियाँ बहती हैं। कमल-नाल के सदृश सुमेरु पर्वत की बीस पर्वत श्रेणियाँ यथा कुरंग, कुरर, कुसुम्भ,

वैकंठ तथा त्रिकूट घेरे हुए हैं। सुमेरु के पूर्व जठार तथा देवकूट, पश्चिम में पवन तथा पारियात्र, दक्षिण में कैलाश तथा करवीर और उत्तर में त्रिशृंग तथा मकर पर्वत स्थित हैं। ये आठों पर्वत लगभग १८,००० योजन लम्बे, २,००० योजन चौड़े तथा २,००० योजन ऊँचे हैं। सुमेरु पर्वत के शृंग पर ब्रह्मपुरी है जो ब्रह्माजी का आवास है। इसकी चारों भुजाओं में से हर एक १०,००० योजन लम्बी है। ब्रह्मपुरी को घेरे हुए राजा इन्द्र तथा सात अन्य देवताओं की पुरियाँ हैं। ये सब पुरियाँ ब्रह्मपुरी के चौथाई आकार की हैं।

राजोवाच

उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणेश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥
१ ॥

शब्दार्थ

राजा उवाच—महाराज परीक्षित् बोले; उक्तः—पहले ही कहा जा चुका है; त्वया—आपके द्वारा; भू-मण्डल—भूमण्डल नामक लोक; आयाम-विशेषः—त्रिज्या की विशेष लम्बाई; यावत्—जब तक; आदित्यः—सूर्य; तपति—तपता है, दीप्तिमान है; यत्र—वहाँ भी; च—भी; असौ—वह; ज्योतिषाम्—ज्योतिषियों का; गणैः—समूह के साथ; चन्द्रमा—चन्द्रमा; वा—या; सह—साथ; दृश्यते—देखा जाता है।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से कहा—हे ब्राह्मण, आपने मुझे पहले ही बता दिया है कि भूमण्डल की त्रिज्या वहाँ तक विस्तृत है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश और उष्मा पहुँचती है तथा चन्द्रमा और अन्य नक्षत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में इसका उल्लेख है कि भूमण्डल नामक लोक वहाँ तक विस्तीर्ण है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य का प्रकाश ९,३०,००,००० मील दूरी तय करके पृथ्वी तक पहुँचता है। यदि हम इस आधार पर गणना करें तो भूमण्डल की त्रिज्या ९,३०,००,००० मील हुई। गायत्री मंत्र में हम ॐ भूर् भुवः स्वः का जप करते हैं। इसमें भूर् शब्द भूमण्डल का द्योतक है। *तत् सवितुर् वरेण्यम्*—सूर्य का प्रकाश भूमण्डल में फैलता है। अतः सूर्य पूजनीय है। तारे, जिनको नक्षत्र कहा जाता है, अन्य प्रकार के सूर्य नहीं हैं, जैसाकि आधुनिक विज्ञानी मानते हैं। *भगवद्गीता* (१०.२१) से हमें विदित होता कि ये नक्षत्र चन्द्रमा के ही समान हैं (*नक्षत्राणां अहं शशी*)। चन्द्रमा की ही भाँति नक्षत्र भी सूर्य प्रकाश को परावर्तित करते हैं। ग्रहों की स्थिति के सम्बन्ध में आज जितना भी ज्ञान प्राप्त है उससे भी अधिक हमें *श्रीमद्भागवत* के सृजन के पहले ही

आकाश तथा विभिन्न ग्रहों के विषय में ज्ञात था। शुकदेव गोस्वामी ने ग्रहों की स्थिति के सम्बन्ध में जो व्याख्या की है उससे यही सूचित होता है कि उनसे भी पहले अत्यन्त दीर्घकाल से तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त था। वैदिक काल के ऋषियों को विभिन्न लोकों की स्थिति अज्ञात न थी।

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्रिप्ता यत एतस्याः
सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन्खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं
विजिज्ञासामि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तत्र अपि—उस भू-मण्डल में; प्रियव्रत-रथ-चरण-परिखातैः—सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते समय प्रियव्रत महाराज के रथ के पहियों से निर्मित गड्डों के द्वारा; सप्तभिः—सात; सप्त सिन्धवः—सात समुद्र; उपकल्पिताः—प्रभूत; यतः—जिसके कारण; एतस्याः—इस भूमण्डल का; सप्त-द्वीप—सातों द्वीपों का; विशेष-विकल्पः—सरंचना शैली; त्वया—आपके द्वारा; भगवन्—हे महामुनि; खलु—निश्चय ही; सूचितः—वर्णित; एतत्—यह; एव—निस्सन्देह; अखिलम्—सम्पूर्ण प्रजा; अहम्—मैं; मानतः—माप की दृष्टि से; लक्षणतः—(तथा) लक्षणों से; च—भी; सर्वम्—प्रत्येक वस्तु; विजिज्ञासामि—जानने की इच्छा करता हूँ।

हे भगवन्, महाराज प्रियव्रत के रथ के चक्रायमाण पहियों से सात गड्डे बने, जिससे सात समुद्रों की उत्पत्ति हुई। इन सात समुद्रों के ही कारण भूमण्डल सात द्वीपों में विभक्त है। आपने इनकी माप, नाम तथा विशिष्टताओं का अत्यन्त सामान्य वर्णन मात्र किया है। मुझे विस्तार से इनके सम्बन्ध में जानने की इच्छा है। कृपया मेरी कामना पूर्ण करें।

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति
वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

भगवतः—श्रीभगवान् का; गुण-मये—भौतिक प्रकृति के त्रिगुण युक्त बाह्यस्वरूपों में; स्थूल-रूपे—स्थूल रूप; आवेशितम्—प्रविष्ट; मनः—मन; हि—निश्चित रूप से; अगुणे—दिव्य इन्द्रियातीत; अपि—यद्यपि; सूक्ष्मतमे—हृद्देश से अपने लघुतर रूप में परमात्मा; आत्म-ज्योतिषि—जो ब्रह्म तेज से पूर्ण है; परे—परम; ब्रह्मणि—आत्मस्वरूप; भगवति—श्रीभगवान् में; वासुदेव-आख्ये—भगवान् वासुदेव के नाम से विख्यात; क्षमम्—उपयुक्त; आवेशितुम्—आत्मसात्; तत्—वह; उ ह—निस्सन्देह; एतत्—यह; गुरो—हे गुरुदेव; अर्हसि अनुवर्णयितुम्—कृपया विस्तारपूर्वक कहें; इति—इस प्रकार।

जब मन प्रकृति के गुणों से निर्मित पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बाह्यरूप—स्थूल विश्व रूप—पर स्थिर हो जाता है, तो उसे शुद्ध सत्त्व की स्थिति प्राप्त होती है। उस दिव्य स्थिति में ही भगवान् वासुदेव को जाना जा सकता है जो अपने सूक्ष्मरूप में स्वतः प्रकाशित और गुणातीत हैं। हे प्रभो, विस्तार से वर्णन करें कि वह रूप जो सारे विश्व में व्याप्त है किस प्रकार देखा जाता है।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित को उनके गुरु शुकदेव गोस्वामी ने पहले ही यह उपदेश दे रखा था कि वे श्रीभगवान् के विराट रूप का मनन करें, अतः उन्होंने गुरु के उपदेश का पालन करते हुए उसी रूप का सतत चिन्तन किया। विराट रूप निश्चय ही सांसारिक है, किन्तु प्रत्येक वस्तु श्रीभगवान् का अंश है, अतः अन्ततः कुछ भी सांसारिक नहीं है। फलतः महाराज परीक्षित का मन आत्मचेतना से संतुप्त था। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—

प्रापंचिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ।

मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ॥

प्रत्येक वस्तु, यहाँ तक कि भौतिक वस्तु भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित है, फलतः प्रत्येक वस्तु को श्रीभगवान् की सेवा में समर्पित कर देना चाहिए। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस श्लोक का अनुवाद वर्णन इस प्रकार किया है—

हरि-सेवाय याहा हय अनुकूल ।

विषय बलिया ताहार त्यागो हय भुल ॥

“मनुष्य को चाहिए कि श्रीभगवान् से सम्बद्ध किसी भी वस्तु को यह सोचकर न त्याग दे कि यह भौतिक है अथवा इन्द्रियसुख के हेतु है।” यहाँ तक कि शुद्ध हो जाने पर इन्द्रियाँ भी आध्यात्मिक हो जाती हैं। जब महाराज परीक्षित श्रीभगवान् के विराट रूप का चिन्तन कर रहे थे तो उनका मन निश्चित रूप से दिव्य धरातल पर स्थित था। अतः वे ब्रह्माण्ड के विषय में विस्तृत जानकारी की इच्छा न रखने पर भी श्रीभगवान् की पृष्ठभूमि में उसका चिन्तन कर रहे थे। इसीलिए ऐसा भौगोलिक ज्ञान भौतिक न होकर दिव्य था। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र (१.५.२०) नारद मुनि कहते हैं, *इदं हि विश्वं भगवान् इवेतरः*—यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही श्रीभगवान् है, भले ही यह उनसे भिन्न प्रतीत हो। अतः भले ही परीक्षित महाराज को इस ब्रह्माण्ड के भौगोलिक ज्ञान की आवश्यकता न रही हो, किन्तु वह ज्ञान आध्यात्मिक तथा दिव्य था, क्योंकि वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को श्रीभगवान् की शक्ति का विस्तार मान रहे थे।

हम भी अपने उपदेश कार्य के लिए प्रचुर धन एवं सम्पत्ति का उपयोग करते हैं और अनेकानेक पुस्तकों का क्रय-विक्रय करते हैं। किन्तु चूँकि ये व्यापार कृष्णभावनामृत आन्दोलन से सम्बन्धित होते

हैं, अतः इन्हें कभी भी भौतिक नहीं मानना चाहिए। यदि कोई ऐसे प्रबन्ध के विचार में व्यस्त रहता है, तो इसका यह अर्थ नहीं होगा कि वह कृष्णभक्ति से परे है। यदि कोई प्रतिदिन नियमित रूप से सोलह माला महामंत्र का जप करता है, तो कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार के लिए भौतिक जगत से उसका सम्पर्क कृष्णभावनामृत के आध्यात्मिक अनुशीलन से किसी प्रकार भिन्न नहीं कहा जा सकता।

ऋषिरुवाच

न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः. ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ऋषिः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; महा-राज—हे महान् राजा; भगवतः—श्रीभगवान् का; माया-गुण-विभूतेः—माया के गुणों का रूपान्तर; काष्ठाम्—अन्त, इति; मनसा—मनसे; वचसा—वचन से; वा—अथवा; अधिगन्तुम्—भलीभाँति समझने के लिए; अलम्—समर्थ; विबुध-आयुषा—ब्रह्मा के समान आयु वाला; अपि—भी; पुरुषः—व्यक्ति; तस्मात्—अतः; प्राधान्येन—प्रमुख स्थानों के सामान्य विवरण से; एव—निश्चित रूप से; भू-गोलक-विशेषम्—भूलोक का विशिष्ट वर्णन; नाम-रूप—नाम तथा स्वरूप; मान—परिमाण, माप; लक्षणतः—लक्षणों के अनुसार; व्याख्यास्यामः—व्याख्या करने का प्रयत्न करूँगा।

ऋषिश्रेष्ठ शुकदेव गोस्वामी बोले, हे राजन्, श्रीभगवान् की माया के विस्तार की कोई सीमा नहीं है। यह भौतिक जगत सत्त्व, रज तथा तम् इन तीन गुणों का रूपान्तर है; फिर भी ब्रह्मा के समान दीर्घ आयु पाकर भी इसकी व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं है। इस भौतिक जगत में कोई भी पूर्ण नहीं और अपूर्ण मनुष्य सतत चिन्तन के बाद भी इस भौतिक ब्रह्माण्ड का सही वर्णन नहीं कर सका। तो भी, हे राजन्, मैं भूगोलक (भूलोक) जैसे प्रमुख भूखण्डों की उनके नामों, रूपों, प्रमापों तथा विविध लक्षणों सहित व्याख्या करने का प्रयत्न करूँगा।

तात्पर्य : यह भौतिक जगत श्रीभगवान् की सृष्टि का चतुर्थांश ही है, किन्तु है अनन्त तथा किसी के लिए भी उसका वर्णन कर पाना या उसे जान पाना असम्भव है, भले ही उसे ब्रह्मा जैसी लाखों वर्ष की दीर्घायु क्यों न प्राप्त हो जाये। आधुनिक विज्ञानी जन तथा ज्योतिर्विद ब्रह्माण्ड की स्थिति और अन्तरिक्ष की विशालता की व्याख्या करने का प्रयत्न कर रहे हैं और उनमें से कुछ का विश्वास है कि सारे प्रकाशमान नक्षत्र विभिन्न सूर्य हैं। किन्तु *भगवद्गीता* से हमें यह पता चलता है कि ये समस्त नक्षत्र चन्द्रमा के तुल्य हैं, क्योंकि ये सूर्य प्रकाश को परावर्तित करते हैं। ये स्वयंप्रकाशित नहीं हैं। भूलोक बाह्य अन्तरिक्ष का वह भाग है, जिसमें से होकर सूर्य प्रकाश तथा उष्मा गति करते हैं। अतः यह

निष्कर्ष निकाला जाना स्वाभाविक है कि यह ब्रह्माण्ड जहाँ तक हमें दिखाई देता है, वहाँ तक अन्तरिक्ष में फैला है और प्रकाशयुक्त नक्षत्रों तक परिवृत है। श्रील शुकदेव गोस्वामी यह स्वीकार करते हैं कि इस ब्रह्माण्ड का पूर्ण वर्णन कर पाना असम्भव है, किन्तु फिर भी वे राजा परीक्षित को वह सब ज्ञान प्रदान करना चाह रहे थे, जो उन्हें परम्परा से प्राप्त हुआ था। अतः हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि यदि कोई श्रीभगवान् के भौतिक विस्तार को नहीं समझ पाता तो वह चिन्मय जगत की विराटता का अनुमान नहीं लगा सकता। *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) इसकी पुष्टि करती है—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्

आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द के विस्तार की सीमाओं का अनुमान लगा पाना किसी के लिए भी असम्भव है, भले ही वह ब्रह्मा के समान पूर्ण मानव क्यों न हो। फिर भला तुच्छ विज्ञानियों की क्या विसात, जिसकी इन्द्रियाँ तथा उपकरण सभी अपूर्ण हैं और जो इस एक ब्रह्माण्ड के विषय में भी पूरी जानकारी नहीं दे पाते! अतः हमें शुकदेव गोस्वामी जैसे प्रामाणिक पुरुषों द्वारा कथित वैदिक स्रोतों से उपलब्ध जानकारी से ही सन्तुष्ट होना चाहिए।

यो वायं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥

५ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; वा—अथवा; अयम्—यह; द्वीपः—द्वीप; कुवलय—भूलोक; कमल-कोश—कमल गुच्छ; अभ्यन्तर—भीतरी; कोशः—कोश; नियुत-योजन-विशालः—दस लाख योजन (अस्सी लाख मील) चौड़ा; समवर्तुलः—समान रूप से गोल अथवा समान लम्बाई तथा चौड़ाई वाला; यथा—सदृश; पुष्कर-पत्रम्—कमल का पत्र।

भूमण्डल नाम से विख्यात ग्रह कमल पुष्प के अनुरूप है और इसके सातों द्वीप पुष्प-कोश के सदृश हैं। इस कोश के मध्य में स्थित जम्बूद्वीप की लम्बाई तथा चौड़ाई दस लाख योजन (अस्सी लाख मील) है। जम्बूद्वीप कमल-पत्र के समान गोल है।

यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—उस जम्बूद्वीप में; नव—नौ (संख्या); वर्षाणि—भूखण्ड अथवा वर्ष; नव-योजन-सहस्र—नौ हजार योजन अर्थात् ७२,००० मील लम्बा; आयामानि—माप वाला, आयाम का; अष्टभिः—आठ; मर्यादा—सीमा सूचक; गिरिभिः—पर्वतों के द्वारा; सुविभक्तानि—भली-भाँति विभाजित; भवन्ति—हैं।

जम्बूद्वीप में नौ वर्ष (खण्ड) हैं जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई ९,००० योजन (७२,००० मील) है। इन खण्डों की सीमा अंकित करने वाले आठ पर्वत हैं, जो उन्हें भली भाँति विलग करते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने वायु पुराण से निम्नलिखित उद्धरण दिया है, जिसमें हिमालय पर्वत से प्रारम्भ करके विभिन्न पर्वतों की स्थितियाँ दी गई हैं—

धनुर्वत संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रम् इलावृतम् इति दक्षिणोत्तरे
भारतोत्तरकुरुवर्षे चत्वारि किंपुरुषहरिवर्षरम्यकहिरण्मयानि वर्षाणि नीलनिषधयोस्तिरश्चिनीभूय
समुद्रप्रविष्टयोः संलग्नत्वम् अंगीकृत्य भद्राश्वकेतुमालयोः अपि धनुराकृतित्वम्। अतस्तयोर् दैर्घ्यत एव
मध्ये संकुचितत्वेन नवसहस्रायामत्वम्। इलावृतस्य तु मेरोः सकाशात् चतुर्दिक्षु नवसहस्रायामत्वं संभवेत्
वस्तुतस् त्व इलावृतभद्राश्वकेतुमालानां चतुस्त्रिंशत् सहस्रायामत्वं ज्ञेयम्।

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्ष यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो
मेरुद्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले
षोडशसहस्रं तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्टः. ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

एषाम्—जम्बूद्वीप के इन समस्त खंडों के; मध्ये—मध्य में; इलावृतम् नाम—इलावृत वर्ष नामक; अभ्यन्तर-वर्षम्—आन्तरिक खण्ड; यस्य—जिसके; नाभ्याम्—नाभि में; अवस्थितः—स्थित; सर्वतः—पूरी तरह, पूर्णरूपेण; सौवर्णः—स्वर्ण का बना हुआ; कुल-गिरि-राजः—प्रसिद्ध पर्वतों में सर्वश्रेष्ठ; मेरुः—मेरु पर्वत; द्वीप-आयाम-समुन्नाहः—जिसकी ऊँचाई जम्बूद्वीप की चौड़ाई के समान है; कर्णिका-भूतः—आवरण के रूप में विद्यमान; कुवलय—इस लोक के; कमलस्य—कमल पुष्प के सदृश; मूर्धनि—शीर्ष पर; द्वा-त्रिंशत्—बत्तीस; सहस्र—हजार; योजन—योजन (प्रत्येक ८ मील का); विततः—विस्तृत; मूले—आधार पर मूल भाग में; षोडश-सहस्रम्—सोलह हजार योजन; तावत्—तक; आन्तः-भूम्याम्—पृथ्वी के भीतर; प्रविष्टः—धँसा हुआ।

इन खण्डों (वर्षों) में से इलावृत नाम का एक वर्ष है जो कमल-कोश के मध्य में स्थित है। इलावृत वर्ष में ही सुवर्ण का बना हुआ सुमेरु पर्वत है। यह कमल जैसे भूमण्डल के बाह्य-आवरण की तरह है। इस पर्वत की चौड़ाई जम्बूद्वीप की चौड़ाई के तुल्य, अर्थात् एक लाख योजन या आठ लाख मील है, जिसमें से १६,००० योजन (१,२८,००० मील) पृथ्वी के भीतर है, जिससे पृथ्वी के ऊपर पर्वत की ऊँचाई केवल ८४,००० योजन (६,७२,००० मील) ही है।

शीर्ष पर इस पर्वत की चौड़ाई ३२,००० योजन (२,५६,००० मील) और पाद भाग पर १६,००० योजन है।

उत्तरोत्तरेणोलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव हसन्ति. ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

उत्तर-उत्तरेण इलावृतम्—इलावृत वर्ष के सुदूर उत्तर में; नीलः—नील; श्वेतः—श्वेत; शृङ्गवान्—शृंगवान्; इति—इस प्रकार; त्रयः—तीन पर्वत; रम्यक—रम्यक; हिरण्मय—हिरण्मय; कुरूणाम्—कुरु खण्ड के; वर्षाणाम्—वर्षों में; मर्यादा-गिरयः—सीमा बताने वाले पर्वत; प्राक्-आयताः—पूर्व दिशा में फैले; उभयतः—पूर्व तथा पश्चिम की ओर; क्षारोद—लवण सागर; अवधयः—तक फैले हुए; द्वि-सहस्र-पृथवः—जो दो हजार योजन चौड़ा हैं; एक-एकशः—एक के बाद एक, क्रमशः; पूर्वस्मात्—प्रथम की अपेक्षा; पूर्वस्मात्—प्रथम की अपेक्षा; उत्तरः—और भी उत्तर; उत्तरः—और भी उत्तर; दश-अंश-अधिक-अंशेन—पहले वाले का दशमांश; दैर्घ्यः—लम्बाई में; एव—निस्सन्देह; हसन्ति—घटते (छोटे होते) जाते हैं।

इलावृत-वर्ष के सुदूर उत्तर में क्रमशः नील, श्वेत तथा शृंगवान् नामक तीन पर्वत हैं। ये तीनों रम्यक, हिरण्मय तथा कुरु इन तीन वर्षों की सीमा-रेखा बनाने वाले हैं और इनको एक दूसरे से विभक्त करते वाले हैं। इन पर्वतों की चौड़ाई २,००० योजन (१६,००० मील) है। लम्बाई में ये पूर्व से पश्चिम की ओर लवण सागर के तट तक विस्तृत हैं। दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ने पर प्रत्येक पर्वत की लम्बाई अपने पूर्ववर्ती पर्वत की दशमांश होती जाती है, किन्तु इन सबकी ऊँचाई एक सी रहती है।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में मध्वाचार्य ने ब्रह्माण्ड पुराण से निम्न लिखित श्लोक उद्धृत किये हैं।

यथा भागवते तूक्तं भौवनं कोश-लक्षणं।

तस्याविरोधतो योज्यम् अन्यग्रंथान्तरे स्थितम् ॥

मण्डोदे पुराणं चैव व्यत्यासं क्षीरसागरे।

राहुसोमरवीणां च मण्डलाद्विगुणोक्ताम् ॥

विनैव सर्वम् उन्नेयं योजनाभेदतोऽत्र तु।

इन श्लोकों से ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य तथा चन्द्र के अतिरिक्त एक अन्य अदृश्य ग्रह भी है, जिसे राहु कहते हैं। राहु के गतिशील होने से सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण लगते हैं। हमारा सुझाव है कि चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए जो आधुनिक यात्राएँ की जा रही हैं, वे भूल से राहु तक जाती हैं।

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिम्पुरुषभारतानां यथासङ्ख्यम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; दक्षिणेन—दक्षिण दिशा में; इलावृतम्—इलावृत वर्ष के; निषधः हेम-कूटः हिमालयः—निषध, हेमकूट तथा हिमालय ये तीन पर्वत; इति—इस प्रकार; प्राक्-आयताः—पूर्व दिशा तक विस्तारित; यथा—जिस प्रकार; नील-आदयः—नील इत्यादि पर्वत; अयुत-योजन-उत्सेधाः—दस हजार योजन ऊँचा; हरि-वर्ष—हरिवर्ष नामक खण्ड; किम्पुरुष—किंपुरुष नामक खण्ड; भारतानाम्—भारतवर्ष नामक खण्ड; यथा-सङ्ख्यम्—संख्यानुसार, क्रमशः।

इसी प्रकार, इलावृत-वर्ष के दक्षिण में तथा पूर्व से पश्चिम को फैले हुए तीन विशाल पर्वत हैं (उत्तर से दक्षिण को) जिनके नाम हैं—निषध, हेमकूट तथा हिमालय। इनमें से प्रत्येक १०,००० योजन (८०,००० मील) ऊँचा है। ये हरिवर्ष, किम्पुरुष-वर्ष तथा भारतवर्ष नामक तीन वर्षों की सीमाओं के सूचक हैं।

तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्रयोः सीमानं विदधाते ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तथा एव—उसके ही समान; इलावृतम् अपरेण—इलावृत वर्ष के पश्चिम में; पूर्वेण च—और पूर्व दिशा में भी; माल्यवद्-गन्ध-मादनौ—पश्चिम में माल्यवान् तथा पूर्व में गन्धमादन सीमा बनाने वाले पर्वत; आ-नील-निषध-आयतौ—उत्तर दिशा में नीलपर्वत तक और दक्षिण दिशा में निषध पर्वत तक; द्वि-सहस्रम्—दो हजार योजन; पप्रथतुः—फैले हुए हैं; केतुमाल-भद्राश्रयोः—केतुमाल तथा भद्राश्रु इन दो वर्षों की; सीमानम्—सीमा; विदधाते—स्थापना करते हैं।

इसी प्रकार से इलावृत-वर्ष के पूर्व तथा पश्चिम क्रमशः माल्यवान् और गन्धमादन नामक दो विशाल पर्वत हैं। ये दोनों २,००० योजन (१६,००० मील) ऊँचे हैं और उत्तर में नीलपर्वत तक तथा दक्षिण में निषध तक फैले हैं। ये इलावृत-वर्ष की और केतुमाल तथा भद्राश्रु नामक वर्षों की भी सीमाओं के सूचक हैं।

तात्पर्य : इस पृथ्वी ग्रह पर ही न जाने कितने पर्वत हैं जिनकी ठीक से माप नहीं हो पाई है। मेक्सिको से काराकास के मध्य पर्वतीय क्षेत्र के ऊपर से यात्रा करते हुए हमने इतने पर्वत देखे कि शायद ही उन सबों की ठीक-ठीक ऊँचाई, लम्बाई तथा चौड़ाई नापी गई हो। अतः जैसा श्रीशुकदेव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत में इंगित किया है, हमें मात्र अपनी गणना के द्वारा बड़े-बड़े पर्वतों को जानने का प्रयास नहीं करना चाहिए। उन्होंने यह पहले ही कह दिया है कि ब्रह्मा जैसी दीर्घायु पाकर भी इनकी गणना कर पाना सम्भव नहीं है। हमें शुकदेव गोस्वामी जैसे प्रामाणिक विद्वानों के कथन से

संतुष्ट हो जाना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि श्रीभगवान् की माया से यह सारा ब्रह्माण्ड किस प्रकार सम्भव हो सका है। यहाँ पर जो प्रमाण दिये गये हैं—यथा १०,००० या १००,००० योजन उन्हें सही मानना चाहिए, क्योंकि वे श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा दिए गये हैं। हमारे प्रयोगात्मक ज्ञान से श्रीमद्भागवत के कथनों की न तो पुष्टि हो सकती है न अपुष्टि। हमें विद्वानों के मुख से ऐसे कथनों का श्रवण मात्र करना चाहिए। यदि हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की असीम शक्ति को समझ सकें तो इसमें हम लाभान्वित ही होंगे।

मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्रिप्ताः. ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

मन्दरः—मन्दर नामक पर्वत; मेरु-मन्दरः—मेरु-मन्दर पर्वत; सुपार्श्वः—सुपार्श्व पर्वत; कुमुदः—कुमुद पर्वत; इति—इस प्रकार; अयुत-योजन-विस्तार-उन्नाहाः—जिनकी ऊँचाई तथा चौड़ाई दस हजार योजन है; मेरोः—सुमेरु की; चतुः-दिशम्—चारों दिशाएँ; अवष्टम्भ-गिरयः—पर्वत जो सुमेरु की मेखलाओं के सदृश हैं; उपक्रिप्ताः—स्थित हैं।

सुमेरु पर्वत की चारों दिशाओं में मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद नामक चार पर्वत हैं, जो इसकी मेखलाओं के सदृश हैं। ये पर्वत १०,००० योजन (८०,००० मील) ऊँचे तथा इतने ही चौड़े हैं।

चतुर्ध्वतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव
इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः. ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

चतुर्ध्व—चारों पर; एतेषु—मन्दर इत्यादि इन चारों पर; चूत-जम्बू-कदम्ब—आम, जामुन तथा कदम्ब जैसे वृक्ष; न्यग्रोधाः—(तथा) वट वृक्ष; चत्वारः—चार प्रकार के; पादप-प्रवराः—वृक्षों में श्रेष्ठ; पर्वत-केतवः—पर्वतों पर ध्वजाएँ; इव—सदृश; अधि—ऊपर; सहस्र-योजन-उन्नाहाः—एक हजार योजन ऊँचा; तावत्—इतना भी; विटप-विततयः—शाखाओं की लम्बाई; शत-योजन—एक सौ योजन; परिणाहाः—चौड़ी।

इन चारों पर्वतों की चोटियों पर ध्वजाओं के रूप में एक एक आम्र, जामुन, कदम्ब तथा वट वृक्ष हैं। इन वृक्षों का घेरा १०० योजन (८०० मील) तथा ऊँचाई १,१०० योजन (८,८०० मील) है। इनकी शाखाएँ १,१०० योजन की त्रिज्या में फैली हैं।

हृदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ
धारयन्ति; देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति. ॥ १३१४ ॥

शब्दार्थ

हृदाः—सरोवर; चत्वारः—चार; पयः—दुग्ध; मधु—शहद; इक्षु-रस—गन्ने का रस; मृष्ट-जलाः—विशुद्ध जल से पूरित; यत्—जिसका; उपस्पर्शिनः—तरल पदार्थों का प्रयोग करनेवाले; उपदेव-गणाः—देवतागण; योग-ऐश्वर्याणि—योग की समस्त सिद्धियाँ; स्वाभाविकानि—सरलता से; भरत-ऋषभ—हे भरतवंश में श्रेष्ठ; धारयन्ति—धारण करते हैं; देव-उद्यानानि—स्वर्गिक उद्यान; च—भी; भवन्ति—हैं; चत्वारि—चार; नन्दनम्—नन्दनवन; चैत्र-रथम्—चैत्ररथ उद्यान; वैभ्राजकम्—वैभ्राजक उद्यान; सर्वतः—भद्रम्—सर्वतोभद्र उद्यान; इति—इस प्रकार।

भरतवंश में श्रेष्ठ, हे महाराज परीक्षित, इन चारों पर्वतों के मध्य में चार विशाल सरोवर हैं। इनमें से पहले का जल दुग्ध की तरह, दूसरे का मधु के सदृश और तीसरे का इक्षुरस की भाँति स्वादिष्ट है। चौथा सरोवर विशुद्ध जल से परिपूर्ण है। इन चारों सरोवरों की सुविधा का उपभोग सिद्ध, चारण तथा गन्धर्व जैसे अपार्थिव प्राणी, जिन्हें देवता भी कहा जाता है, करते हैं। फलस्वरूप उन्हें योग की सहज सिद्धियाँ—यथा, सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतर और से रूप धारण करने की शक्तियाँ—प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त चार देव-उद्यान भी हैं, जिनके नाम हैं—नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक तथा सर्वतोभद्र। दीर्घतर

येष्वमरपरिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

येषु—जिनमें; अमर-परिवृढाः—सर्वश्रेष्ठ देवगण; सह—सहित; सुर-ललना—समस्त देवताओं तथा उपदेवताओं की पत्नियों के; ललाम—आभूषण सदृश उन स्त्रियों के; यूथ-पतयः—पतिगण; उपदेव-गणैः—उपदेवों (गन्धर्वों) के द्वारा; उपगीयमान—जिनकी स्तुति हो रही है; महिमानः—जिनका यश; किल—निश्चय ही; विहरन्ति—विहार करते हैं, क्रीड़ा करते हैं।

इन उद्यानों में श्रेष्ठतम देवगण अपनी-अपनी सुन्दर पत्नियों के सहित जो स्वर्गिक सौन्दर्य के आभूषणों जैसी हैं, एकत्र होकर आनन्द लेते हैं और गन्धर्व-जन उनके यश-गान करते हैं।

मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मन्दर-उत्सङ्गे—मन्दर पर्वत की निचली ढाल पर; एकादश-शत-योजन-उत्तुङ्ग—१,१०० योजन ऊँचा; देवचूत-शिरसः—देवचूत नामक आम्रवृक्ष की चोटी से; गिरि-शिखर-स्थूलानि—जो पर्वतशृंगों के समान स्थूल हैं; फलानि—फल; अमृत-कल्पानि—अमृत की भाँति मधुर; पतन्ति—गिरते हैं।

मन्दर पर्वत की निचली ढलान पर देवचूत नामक एक आम्रवृक्ष है, जिसकी ऊँचाई १,१०० योजन है। इस वृक्ष की चोटी से पर्वतशृंग जितने बड़े तथा अमृत तुल्य मधुर फल गिरते रहते हैं जिनका उपभोग दिव्य लोक के निवासी करते हैं।

तात्पर्य : विद्वान ऋषियों ने वायु पुराण में भी इस वृक्ष का उल्लेख किया है—

अरत्नीनां शतान्यष्टावेकषष्ट्यधिकानि च ।

फलप्रमाणमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी
मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणोलावृतमुपप्लावयति. ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—सभी आम्रफलों के; विशीर्यमाणानाम्—चोटी से गिरकर फट जाने के कारण; अति-मधुर—अत्यन्त मीठी; सुरभि—महकने वाली; सुगन्धि—सुगन्धयुक्त; बहुल—प्रभूत मात्रा; अरुण-रस-उदेन—लाल-लाल रस के द्वारा; अरुणोदा—अरुणोदा; नाम—नामक; नदी—सरिता; मन्दर-गिरि-शिखरात्—मन्दर पर्वत के शिखर से; निपतन्ती—गिरती हुई; पूर्वेण—पूर्व दिशा में; इलावृतम्—इलावृत-वर्ष से होकर; उपप्लावयति—बहती है।

इतनी ऊँचाई से गिरने के कारण वे सभी आम्रफल फट जाते हैं और उनका मधुर, सुगन्धित रस बाहर निकल आता है। यह रस अन्य सुगन्धियों से मिलकर अत्यधिक सुरभित हो जाता है। यही रस पर्वत से झरनों में जाता है और अरुणोदा नामक नदी का रूप धारण कर लेता है जो इलावृत की पूर्व दिशा से होकर बहती है।

यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनं
समन्तादनुवासयति. ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका; उपजोषणात्—सुगन्धित जल का प्रयोग करने से; भवान्याः—भगवान् शिव की पत्नी भवानी की; अनुचरीणाम्—अनुचरियों का; पुण्य-जन-वधूनाम्—जो परम पवित्र यक्षों की पत्नियाँ हैं; अवयव—शरीर के अंगों के; स्पर्श—स्पर्श से; सुगन्ध-वातः—सुरभित वायु; दश-योजनम्—दस योजन (अस्सी मील) तक; समन्तात्—चारों ओर; अनुवासयति—सुवासित करती है।

यक्षों की पवित्र पत्नियाँ भगवान् शंकर की अर्द्धांगिनी भवानी की अनुचरी हैं। अरुणोदा नदी के जल का पान करने के कारण उनके शरीर सुगन्धित हो जाते हैं। वायु उनके शरीर का स्पर्श करके उस सुगन्धि से अस्सी मील तक चारों ओर के समस्त वायुमण्डल को सुरभित कर देती है।

एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बू नाम नदी
मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्पन्दयति. ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इसी प्रकार; जम्बू-फलानाम्—जामुन के फलों का; अति-उच्च-निपात—अत्यधिक ऊँचाई से गिरने के कारण; विशीर्णानाम्—खण्ड-खण्ड हो जाने से; अनस्थि-प्रायाणाम्—अत्यन्त लघु बीज होने के कारण; इभ-काय-निभानाम्—और जो हाथी के शरीर के सदृश विशाल हैं; रसेन—रस के द्वारा; जम्बू नाम नदी—जम्बू नामक नदी; मेरु-मन्दर-शिखरात्—मेरु मन्दर पर्वत के शिखर से; अयुत-योजनात्—दस हजार योजन ऊँची; अवनि-तले—पृथ्वी तल पर; निपतन्ती—गिरती हुई; दक्षिणेन—दक्षिण दिशा में; आत्मानम्—स्वयमेव; यावत्—सम्पूर्ण; इलावृतम्—इलावृतवर्ष से; उपस्यन्दयति—होकर बहती है।

इसी प्रकार रस से भरे और अत्यन्त छोटी गुठली वाले जामुन के फल अत्यधिक ऊँचाई से गिरकर खण्ड-खण्ड हो जाते हैं। ये फल हाथी जैसे आकार वाले होते हैं और इनका रस बहकर जम्बूनदी का रूप धारण कर लेता है। यह नदी इलावृत के दक्षिण में मेरुमन्दर की चोटी से दस हजार योजन नीचे गिरकर समस्त इलावृत भूखण्ड को रस से आप्लावित करती है।

तात्पर्य : हम यह अनुमान लगा सकते रहते हैं कि हाथी जैसे आकार वाले फल, जिसमें गुठली नाममात्र की हो, कितना अधिक रस होता होगा। अतः स्वाभाविक है कि जामुन के फलों के फटने से रस पहले झरनों के रूप में बहता है और फिर इलावृत के पूरे प्रदेश को आप्लावित कर देता है। इस रस से प्रभूत मात्रा में स्वर्ण उत्पन्न होता है, जैसाकि अगले श्लोकों में कहा गया है।

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदा मरलोकाभरणं
जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति; यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण
खलु धारयन्ति. ॥ २०२१ ॥

शब्दार्थ

तावत्—सर्वथा; उभयोः अपि—दोनों का; रोधसोः—तटों का; या—जो; मृत्तिका—कीचड़; तत्-रसेन—नदी में बहने वाले जम्बू फलों के रस से; अनुविध्यमाना—संपृक्त होकर; वायु-अर्क-संयोग-विपाकेन—वायु तथा धूप की रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप; सदा—सदैव; अमर-लोक-आभरणम्—जो स्वर्गलोक में निवास करने वाले देवताओं के आभूषणों के लिए प्रयुक्त होता है; जाम्बू-नदम् नाम—जाम्बूनद नामक; सुवर्णम्—स्वर्ण; भवति—बन जाता है; यत्—जो; उ ह वाव—निस्सन्देह; विबुध-आदयः—देवता आदि; सह—साथ; युवतिभिः—अपनी युवा पत्नियों के; मुकुट—मुकुट; कटक—चूड़ियाँ; कटि-सूत्र—करधनी; आदि—इत्यादि; आभरण—सभी प्रकार के आभूषणों के; रूपेण—रूप में; खलु—निश्चय ही; धारयन्ति—धारण करती हैं।

जम्बू नदी के दोनों तटों का कीचड़ जामुनफल के बहते हुए रस से सिक्त होकर और फिर वायु तथा सूर्य प्रकाश के कारण सूख कर जाम्बू-नद नामक स्वर्ण की प्रचुर मात्रा उत्पन्न करता है। स्वर्ग के निवासी इस स्वर्ण का उपयोग विविध आभूषणों के लिए करते हैं। फलतः स्वर्गलोक के सभी निवासी एवं उनकी तरुण पत्नियाँ स्वर्ण के मुकुटों, चूड़ियों तथा करधनियों से आभूषित रहती हैं। इस प्रकार वे सब जीवन का आनन्द लेते हैं।

तात्पर्य : श्रीभगवान् की व्यवस्था के फलस्वरूप कुछ लोकों की नदियों के तटों पर स्वर्ण उत्पन्न

होता है। इस पृथ्वी के बेचारे निवासी अपने अल्पज्ञान के कारण “तथाकथित भगवान्” के वशीभूत हो जाते हैं, जो केवल मुट्टी भर ही स्वर्ण बना पाते हैं। किन्तु ऐसा माना जाता है कि इस भौतिक जगत के उच्चतर लोकों में, जम्बू नदी के तटों का कीचड़ जामुन के रस के साथ मिलकर, सूर्यप्रकाश एवं वायु की प्रक्रिया के कारण प्रचुर मात्रा में स्वर्ण उत्पन्न करता है। इस प्रकार वहाँ के स्त्री-पुरुष विविध स्वर्णाभूषणों से अलंकृत होकर अत्यन्त मनोहर लगते हैं। दुर्भाग्यवश, पृथ्वी पर सोने की इतनी कमी है कि विश्व की सरकारें इसे अपने कोष में रखकर कागजी मुद्रा चलाती हैं। चूँकि यह मुद्रा स्वर्ण पर आश्रित नहीं रहती, इसलिए कागजी नोटों के रूप में वितरित धन व्यर्थ होता है। तो भी सांसारिक प्राणी भौतिक उन्नति पर इतना इतराते हैं। आज के युग में, कन्याएँ तथा स्त्रियाँ सोने के बजाय प्लास्टिक के आभूषण धारण करती हैं, सोने के पात्रों के बजाय प्लास्टिक के बने पात्र काम में लाये जाते हैं, किन्तु फिर भी मनुष्यों को अपनी सम्पत्ति पर अत्यधिक गर्व है। इसीलिए इस युग के मनुष्यों को *मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः* (*भागवत* में १.१.१०) कहा गया है। तात्पर्य यह है कि वे श्रीभगवान् के ऐश्वर्य को न समझ पाने के कारण अत्यन्त मन्द एवं नीच हैं। उन्हें *सुमन्दमतयः* कहा गया है, क्योंकि वे इतने मूर्ख हैं कि मुट्टी भर सोना बनाने वाले धूर्त को ईश्वर मान बैठते हैं। पास में सोना न होने से वे अत्यन्त दरिद्र होते हैं, इसीलिए उन्हें अभागा माना जाता है।

कभी-कभी ये अभागे पुरुष भाग्यशाली स्थान प्राप्त करने के लिए स्वर्गलोक जाना चाहते हैं, जैसाकि इस श्लोक में कहा गया है, किन्तु भगवान् के शुद्ध भक्तों की रुचि ऐसे ऐश्वर्य के प्रति रंच भर भी नहीं होती। दरअसल कभी-कभी भक्तजन तो स्वर्ण के रंग की उपमा चमकीली सुनहली विष्ठा से देते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों को स्वर्ण आभूषणों एवं मनोहारी रूप से अलंकृत स्त्रियों के द्वारा आकृष्ट न होने का उपदेश दिया है। *न धनं न जनं न सुन्दरीम्*—भक्त को चाहिए कि वह न तो स्वर्ण से, न सुन्दर स्त्रियों से तथा न ही अनेक अनुगामियों के होने से आकृष्ट हो। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु ने गुप्त रूप से प्रार्थना की—*मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि*—“मेरे प्रभो, मुझे अपनी अहैतुकी भक्ति प्रदान करें। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए।” भक्त इस भौतिक जगत से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना कर सकता है। यही उसकी एकमात्र कामना है।

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।

कृपया तव पादपंकजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ॥

विनीत भक्त भगवान् से यही प्रार्थना करता है, “कृपा करके अनेकानेक भौतिक ऐश्वर्यों से पूर्ण इस भौतिक जगत से मुझे उबार कर अपने चरणारविन्द की शरण में रख लें।”

श्रीनरोत्तमदास ठाकुर प्रार्थना करते हैं—

हा हा प्रभु नन्दसुत, वृषभानु-सुता-युत

करुणा करह एइ बार

नरोत्तमदास कय, ना ठेलिह रांगापाय,

तोमा विने के आछे आमार

“हे प्रभो, हे नन्द महाराज के पुत्र, आप मेरे समक्ष वृषभानु की पुत्री श्रीमती राधा-रानी सहित खड़े हैं। मुझे अपने चरणकमल की धूलि के रूप में स्वीकार करें। मुझे टुकरावें नहीं, क्योंकि मेरा अन्य कोई आश्रय नहीं है।”

इसी प्रकार से प्रबोधानन्द सरस्वती बताते हैं कि स्वर्णमुकट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत देवताओं की स्थिति आकाशकुसुम से अधिक नहीं है (त्रिदशपूर आकाश-पुष्पायते)। भक्त कभी भी ऐसे ऐश्वर्य से लालायित नहीं होता। वह तो मात्र भगवान् के चरणकमल की धूलि बनने की आकांक्षा रखता है।

यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः
सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति. ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; तु—किन्तु; महा-कदम्बः—महाकदम्ब नामक वृक्ष; सुपार्श्व-निरूढः—जो सुपार्श्व पर्वत की बगल में खड़ा हुआ है; याः—जो; तस्य—उसका; कोटरेभ्यः—कोटर से; विनिःसृताः—प्रवाहित; पञ्च—पाँच; आयाम—व्याम, आठ फुट की माप; परिणाहाः—जिसकी माप; पञ्च—पाँच; मधु-धाराः—मधु की धाराएँ; सुपार्श्व-शिखरात्—सुपार्श्व पर्वत की चोटी से; पतन्त्यः—गिर रही हैं; अपरेण—सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में; आत्मानम्—समग्र; इलावृतम्—इलावृत वर्ष को; अनुमोदयन्ति—सुरभित करती हैं।

सुपार्श्व पर्वत की बगल में महाकदम्ब नामक अत्यन्त प्रसिद्ध विशाल वृक्ष खड़ा है। इस वृक्ष के कोटर से मधु की पाँच नदियाँ निकलती हैं जिनमें से प्रत्येक लगभग पाँच “व्याम” चौड़ी है। यह प्रवहमान मधु सुपार्श्व पर्वत की चोटी से सतत नीचे गिरता रहता है और इलावृत-वर्ष की

पश्चिम दिशा से प्रारम्भ होकर उसके चारों ओर बहता रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण स्थल सुहावनी गंध से पूरित है।

तात्पर्य : दोनों भुजाओं के फैलाने पर एक हथेली से दूसरी के बीच की दूरी “व्याम” कहलाती है जो लगभग आठ फुट होती है। इस प्रकार प्रत्येक नदी की चौड़ाई लगभग चालीस फुट और कुल मिलाकर लगभग दो सौ फुट होगी।

या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

या:—जो (वे मधु धाराएँ); हि—निस्सन्देह; उपयुञ्जानानाम्—पान करने वालों के; मुख-निर्वासितः वायुः—मुखों से निष्कासित वायु; समन्तात्—चतुर्दिक्; शत-योजनम्—एक सौ योजन तक (आठ सौ मील); अनुवासयति—सुगन्धित बना देती है।

इस मधु को पीने वालों के मुख से निकली वायु चारों ओर सौ योजन तक के भूभाग को सुगन्धित बना देती है।

एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः
पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः
कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणोलावृतमुपयोजयन्ति ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कुमुद-निरूढः—कुमुद पर्वत पर उगा हुआ; यः—वह; शत-वल्शः नाम—शतवल्श नामक वृक्ष (एक सौ तने होने के कारण); वटः—वट-वृक्ष; तस्य—उसके; स्कन्धेभ्यः—मोटी-मोटी शाखाओं से; नीचीनाः—नीचे गिरकर; पयः—दुग्ध; दधि—दही; मधु—शहद; घृत—घी; गुड—गुड़; अन्न—अनाज; आदि—इत्यादि; अम्बर—वस्त्र; शय्या—बिस्तर; आसन—बैठने का स्थान; आभरण-आदयः—आभूषणों आदि से युक्त; सर्वे—सब कुछ, प्रत्येक वस्तु; एव—निश्चय ही; काम-दुघाः—समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली; नदाः—बड़ी नदियाँ; कुमुद-अग्रात्—कुमुद पर्वत की चोटी से; पतन्तः—गिरकर, बहकर; तम्—उस तक; उत्तरेण—उत्तर दिशा में; इलावृतम्—इलावृत वर्ष में; उपयोजयन्ति—सुखी बनाती हैं।

इसी प्रकार कुमुद पर्वत के ऊपर एक विशाल वट वृक्ष है, जो एक सौ प्रमुख शाखाओं के कारण शतवल्श कहलाता है। इन शाखाओं से अनेक जड़ें निकली हुई हैं, जिनमें से अनेक नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ इलावृत-वर्ष की उत्तर दिशा में स्थित पर्वत की चोटी से नीचे बहकर वहाँ के निवासियों को लाभ पहुँचाती हैं। इन नदियों के फलस्वरूप लोगों के पास दूध, दही, शहद, घी, राब, अन्न, वस्त्र, बिस्तर, आसन तथा आभूषण हैं। उनकी समृद्धि के लिए उन्हें जो भी पदार्थ चाहिए वे सब उपलब्ध हैं, जिससे वे सभी अत्यन्त सुखी हैं।

तात्पर्य : मानवीय समृद्धि ऐसी आसुरी सभ्यता पर आश्रित नहीं होती जिसमें केवल गगन-चुम्बी प्रासाद और राजमार्ग पर दौड़ने वाले बड़े-बड़े स्वचालित वाहन तो हों, किन्तु वह संस्कृति तथा ज्ञान से शून्य हो। प्राकृतिक पदार्थ ही इसके लिए पर्याप्त होते हैं। जहाँ दूध, दही, मधु, अन्न, घी, गुड़, धोती, साड़ी, बिस्तर, आसन तथा आभूषण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों, वहाँ के वासी ही वास्तव में ऐश्वर्यवान् होते हैं। जब नदी अपने प्रभूत जल की बाढ़ से भूखण्ड को डुबो देती है, तो ये सारी वस्तुएँ उपजाई जा सकती हैं और इस तरह किसी प्रकार का अभाव नहीं दिखता। किन्तु, यह सब कुछ यज्ञ-अनुष्ठान पर निर्भर करता है, जैसाकि वैदिक शास्त्रों में कहा गया है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

“सभी प्राणी अन्न पर निर्भर रहते हैं, जो वर्षा से उत्पन्न होता है। वर्षा यज्ञ करने से होती है और यज्ञ की उत्पत्ति नियत कर्म से होती है।” *भगवद्गीता* (३.१४) में इन नियमों का उल्लेख है। यदि मनुष्य पूर्णरूप से कृष्णभावनामृत में इन नियमों का पालन करे तो मानव समाज सम्पन्न होगा और सभी मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में सुखी रहेंगे।

यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां

वलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

यान्—जो (उपर्युक्त नदियों से उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थ); उपजुषाणानाम्—पूर्णरूप से उपभोग करने वाले पुरुषों का; न—नहीं; कदाचित्—किसी भी समय; अपि—निश्चय ही; प्रजानाम्—प्रजा की; वली—झुर्रियाँ; पलित—पके केश; क्लम—थकान; स्वेद—पसीना; दौर्गन्ध्य—पसीने के कारण दुर्गन्ध; जरा—बुढ़ापा; आमय—रोग; मृत्यु—असामयिक मृत्यु; शीत—कड़ाके की सर्दी; उष्ण—दाहक, गर्मी; वैवर्ण्य—शरीर की कान्ति का धूमिल पड़ना, विवर्णता; उपसर्ग—क्लेश; आदयः—इत्यादि; ताप—दुखों का; विशेषाः—किस्में, प्रकार; भवन्ति—हैं; यावत्—जब तक; जीवम्—जीवन; सुखम्—सुख; निरतिशयम्—अपार, सीमाहीन; एव—केवल।

इस भौतिक जगत के वासी जो इन बहती नदियों से प्राप्त पदार्थों का सेवन करते हैं, उनके शरीर में न तो झुर्रियाँ पड़ती हैं और न उनके केश सफेद होते हैं। न तो उन्हें थकान का अनुभव होता है और न उसके पसीने से उनके शरीर से दुर्गन्ध ही आती है। उन्हें बुढ़ापा, रोग या असामयिक मृत्यु नहीं सताती है न ही वे कड़ाके की सर्दी अथवा झुलसती गर्मी से दुखी होते हैं

और न ही उनके शरीर की कान्ति लुप्त होती है। वे सभी मृत्युपर्यन्त चिन्ताओं से मुक्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में इसी भौतिक जगत के भीतर मानव समाज की सम्पूर्णता का संकेत है। इस भौतिक जगत की दयनीय दशा को दुग्ध, दही, मधु, घी, गुड़, अन्न, आभूषण, बिस्तर, आसन इत्यादि की प्रचुर मात्रा में पूर्ति करके सुधारा जा सकता है। यही मानवीय सभ्यता है। कृषि कर्म द्वारा प्रचुर अन्न उत्पन्न किया जा सकता है और गो-संवर्धन द्वारा प्रचुर दूध, दही तथा घी की व्यवस्था की जा सकती है। वनों की सुरक्षा करके प्रचुर मधु प्राप्त कर सकते हैं। दुर्भाग्यवश आधुनिक सभ्यता के वशीभूत होकर मनुष्य गायों का वध कर रहे हैं, जो दूध, दही, घी की मूल स्रोत हैं। वे उन वृक्षों का विनाश कर रहे हैं, जो मधु देने वाले हैं। वे कृषिकर्म में संलग्न होने के बजाय कल-पुर्जों, स्वचलित वाहनों तथा मदिरा के कारखाने खोलते जा रहे हैं। तो भला मनुष्य किस प्रकार सुखी रह सकते हैं? उन्हें भौतिकता के समस्त कष्टों का भोग करना होगा। उनके शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और धीरे-धीरे उनका क्षय होता रहता है, जिससे वे बौने होने लगते हैं। नाना प्रकार की गर्हित वस्तुओं के खाने से उनके शरीर से पसीना निकलने से दुर्गन्ध निकलती है। यह मानवीय सभ्यता नहीं कहलाती है। यदि सचमुच ही मनुष्य इस जीवन में सुख भोगना चाहते हैं और चाहते हैं कि उनका भावी जीवन सुखमय बने तो उन्हें चाहिए कि वे वैदिक सभ्यता का अनुसरण करें। इस वैदिक सभ्यता में उपर्युक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसऋषभनागक
लङ्गरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्रिप्ताः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कुरङ्ग—कुरंग; कुरर—कुरर; कुसुम्भ—वैकङ्क-त्रिकूट-शिशिर-पतङ्ग-रुचक-निषध-शिनीवास-कपिल-शङ्ख-वैदूर्य-जारुधि-हंस-ऋषभ-नाग-कालङ्गर-नारद—ये सभी पर्वतों के नाम हैं; आदयः—इत्यादि; विंशति-गिरयः—बीस पर्वत; मेरोः—सुमेरु पर्वत के; कर्णिकायाः—कमलकोश के; इव—सदृश; केसर-भूताः—केसर के समान; मूल-देशे—पाद पृष्ठ पर; परितः—चारों ओर; उपक्रिप्ताः—श्रीभगवान् के द्वारा आयोजित।

मेरु पर्वत के तलहटी के चारों ओर अन्य पर्वत इस सुन्दर ढंग से व्यवस्थित हैं मानों कमल पुष्प की कर्णिका के चारों ओर केसर हों। इन पर्वतों के नाम हैं—कुरंग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस,

ऋषभ, नाग, कालञ्जर तथा नारद ।

जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः; एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिसृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः. ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

जठर-देवकूटौ—जठर तथा देवकूट नामक दो पर्वत; मेरुम्—सुमेरु पर्वत; पूर्वेण—पूर्व दिशा में; अष्टादश-योजन-सहस्रम्—अठारह हजार योजन; उदगायतौ—उत्तर से दक्षिण को फैला हुआ; द्वि-सहस्रम्—दो हजार योजन; पृथु-तुङ्गौ—चौड़ाई तथा ऊँचाई में; भवतः—हैं; एवम्—इसी तरह; अपरेण—पश्चिम दिशा में; पवन-पारियात्रौ—पवन तथा पारियात्र नामक दो पर्वत; दक्षिणेन—दक्षिण दिशा में; कैलास-करवीरौ—कैलास तथा करवीर नामक दो पर्वत; प्राक्-आयतौ—पूर्व तथा पश्चिम दिशा में विस्तृत; एवम्—इसी तरह; उत्तरतः—उत्तर दिशा में; त्रिशृङ्ग-मकरौ—त्रिशृंग तथा मकर ये दो पर्वत; अष्टभिः एतैः—इन आठ पर्वतों के द्वारा; परिसृतः—घिरा हुआ; अग्निः इव—अग्नि के सदृश; परितः—सर्वत्र; चकास्ति—तेजी से चमकता है; काञ्चन-गिरिः—सुमेरु या मेरु नामक सोने का पर्वत ।

सुमेरु पर्वत के पूर्व में जठर तथा देवकूट नामक दो पर्वत हैं, जो उत्तर तथा दक्षिण की ओर १८,००० योजन (१,४४,००० मील) तक फैले हुए हैं। इसी प्रकार सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में पवन तथा पारियात्र नामक दो पर्वत हैं, जो उतनी ही दूरी तक उत्तर तथा दक्षिण में भी फैले हैं। सुमेरु के दक्षिण में कैलास तथा करवीर पर्वत हैं, जो पूर्व और पश्चिम में १८,००० योजन तक फैले हुए हैं और सुमेरु की उत्तरी दिशा में त्रिशृंग तथा मकर नामक दो पर्वत पूर्व और पश्चिम में इतनी ही दूरी में विस्तृत हैं। इन समस्त पर्वतों की चौड़ाई २,००० योजन (१६,००० मील) है। इन आठों पर्वतों से घिरा हुआ स्वर्णनिर्मित सुमेरु पर्वत अग्नि की तरह जाज्वल्यमान है।

मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्रिप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति. ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

मेरोः—सुमेरु पर्वत की; मूर्धनि—चोटी पर; भगवतः—सर्वशक्तिमान प्राणी; आत्म-योनेः—भगवान् ब्रह्मा की; मध्यतः—मध्य में; उपक्रिप्ताम्—स्थित; पुरीम्—पुरी, विशाल नगरी; अयुत-योजन—दस हजार योजन; साहस्रीम्—एक हजार; सम-चतुरस्राम्—चारों ओर समान लम्बाई का; शात-कौम्भीम्—पूर्णतः सोने की बनी हुई; वदन्ति—मुनियों का कथन है।

मेरु की चोटी के मध्य भाग में ब्रह्माजी की पुरी स्थित है। इसके चारों कोने समान रूप से एक करोड़ योजन (आठ करोड़ मील) तक विस्तृत हैं। यह पूरे का पूरा स्वर्ण से निर्मित है, इसीलिए विद्वत्जन तथा ऋषि-मुनि इसे शातकौम्भी नाम से पुकारते हैं।

तामनुपरितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्रिप्ताः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ताम्—ब्रह्मपुरी नामक इस पुरी को; अनुपरितः—घेरे हुए; लोक-पालानाम्—लोकों के शासक; अष्टानाम्—आठ; यथा-दिशम्—दिशाओं के अनुसार; यथा-रूपम्—ब्रह्मपुरी के ही समान; तुरीय-मानेन—माप में केवल एक चतुर्थांश; पुरः—पुरी; अष्टौ—आठ; उपक्रिप्ताः—स्थित हैं।

ब्रह्मपुरी के चारों ओर सभी दिशाओं में लोकों के आठ प्रमुख लोकपालों के निवास-स्थल हैं, जिनमें से पहला राजा इन्द्र का है। ये निवासस्थल ब्रह्मपुरी के ही समान हैं, किन्तु वे आकार में एक चौथाई हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि लोकों के आठ अधीनस्थ लोकपालों तथा ब्रह्मा की पुरियों का उल्लेख अन्य पुराणों में पाया जाता है—

मेरौ नवपूराणि स्युर्मनोवत्यमरावती

तेजोवती संयमनी तथा कृष्णांगना परा।

श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया

यशोवती च ब्रह्मेन्द्र ब्रह्मादीनां यथाक्रमम् ॥

ब्रह्मा की पुरी मनोवती कहलाती है और उनके सहायक इन्द्र तथा अग्नि इत्यादि की पुरियाँ अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधावती, महोदया तथा यशोवती कहलाती हैं। ब्रह्मपुरी मध्य में स्थित है और शेष आठों पुरियाँ इसके चारों ओर स्थित हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “जम्बूद्वीप का वर्णन” नामक सोलहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।